Converted from Monolingual to Monolingual Web to Bilingual Web to Unicode using ISM V6

कौन अपना और कौन पराया

मैं चाहता हूँ कि हिंदू अपने आपको हिंदू मानने में गौरवान्वित अनुभव करे। मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसा व्यक्ति जो वाक-चातुरी में निपुण हो, वह एक साधारण भोले हिंदू को अपने वाक-जाल में उलझा कर उल्टी पट्टी पढ़ाये। मैं यह भी नहीं चाहता कि हिंदू अपनी आस्थाओं के प्रति अपने मन में शंका पाले और किसी भी प्रकार की हीन भावना से ग्रसित हो। अतः मैं ब्राह्मणोंचित एवं क्षत्रियोचित प्रयासों द्वारा हिन्दू आस्थाओं, हिन्दू भावनाओं, हिंदू परम्पराओं, हिंदू परिपाटियों के पक्ष में, एवं हिन्दू संस्कृति रक्षार्थ अपनी कलम उठाया करता हूँ।

कहाँ से शुरू करूँ

सम्भवतः इस विषय को लेकर लिखने कभी बैठता ही नहीं, यदि आज वह न हुआ होता, जो हुआ। कुछ दुःखी मन से लिखने बैठा हूँ। पुस्तक का शीर्षक भी कुछ ऐसा ही है क्योंकि जिन्हें मैंने अब तक अपना समझा था, सहसा वे पराये से लगने लगे।

रविवार 29 अप्रैल 2007

घटना दोपहर की है। समय बारह से साढ़े-बारह के बीच। स्थान आर्य समाज, वाशी, नवी मुम्बई। अवसर रजत-जयन्ती समारोह। मंच पर बैठे व्यक्तियों में एक महिला थीं, बाकी सभी पुरुष। महिला का अंतिम नाम शास्त्री था, पहला नाम जानबूझ कर नहीं दे रहा हूँ। जब एक व्यक्ति संस्था की एक विशिष्ट सभा में, अपनी सोच को सबके सामने रखता है, और उस सभा में उपस्थित वरिष्ठजन उस बैठक की समाप्ति तक उस सोच का खण्डन नहीं करते, बल्कि उस व्यक्ति को उसी सभा में सबके सामने सम्मानित करते हैं, एवं श्रोतागणों में से अन्य सभासद उठकर मंचपर आकर उस सम्मानित विद्वान के साथ अपनी आत्मीयता का प्रदर्शन करते हैं, तो यह निष्कर्ष निकालना पूरी तरह से अनुचित न होगा कि 'उस सोच' को उस संस्था में उस सभा की सहमति प्राप्त है। इस स्थिति में उस व्यक्ति का अपना परिचय महत्वपूर्ण नहीं रह जाता। तब 'वह विषय' अपने-आपमें कहीं अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। विशेषकर तब, जब 'वह सोच' (या उस प्रकार की कोई भी अन्य सोच) किसी अन्य बड़े जनसमुदाय के हितों के प्रति घातक बनती है। महिला का अंतिम नाम आपको इसलिए मैंने बताया ताकि आप जान सकें कि उन्हें उस संस्था में एक 'विद्वान/विदुषी' की मान्यता प्राप्त है, एवं उन्हें एक अन्य प्रांत से शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रित किया गया था।

उनका भाषण बहुत लम्बा नहीं था। जब लोग लम्बे भाषण दिया करते हैं तो देखा गया है कि कभी-कभी भाव के आवेश में थोड़ा बहुत बहक जाया करते हैं। हमारे इन शास्त्री जी का भाषण छोटा-सा था, सधा हुआ था, प्रभावी था।

हमारा सबसे पहला दुश्मन है - हिन्दू

शास्त्री जी उस छोटे-से भाषण से मैंने दो गूढ़ रहस्य जाने। एक तो यह जो उन्होंने बड़े ही अधिकार के साथ कहा - 'आर्य समाज का सबसे बड़ा दुश्मन हिन्दू है।' मैं सोच में पड़ गया कि मैं यहाँ बैठा क्या कर रहा हूँ। अभी-अभी तो मैं आया मुश्किल से पंद्रह-बीस मिनट या आधा घंटा पहले। आते ही एक पुरुष वक्ता को बड़ी जोर आवाज में हिन्दू ब्राह्मणों के प्रति कुछ दुर्भावना भरी बातें कहते सुना और फिर ईश्वर की मूर्ति का परोक्ष रूप से मखौल उड़ाते सुना और अब इन महिला वक्ता से सुन रहा हूँ कि मैं हिन्दू के रूप में उनका सबसे पहला दुश्मन हूँ जबकि न तो वह मुझे जानती हैं, न मैं उन्हें जानता हूँ और यदि हम दोनों के बीच में कोई दूर का रिश्ता है तो वह यह कि वह अपने आपको आर्यसमाजी और मुझे हिन्दू मानती हैं। मुझे यह तो मालूम था कि आर्यसमाजी अपने आपको हिन्दुओं से अलग मानते हैं क्योंकि आर्य समाज ने उच्चन्यायालय में याचिका दायर की थी कि आर्य समाज एक हिन्दू संगठन नहीं है, पर मुझे इस बात का आभास नहीं था कि वे हमें अपना सबसे पहला दुश्मन मानते हैं। खैर इससे मुझे कोई नुकसान तो नहीं हुआ पर इतना जान लिया कि कौन अपना है, और कौन पराया।

चलो एक भरम तो टूटा

सम्भवतः यही संकेत मुझे श्री नारायण देना चाहते थे, अन्यथा मेरी प्रकृति के विरुद्ध वे मुझे इतनी दूर जाने को प्रेरित नहीं करते। अन्य किसी स्थिति में यदि मुझे उतना लम्बा सफर करना पड़ता तो मैं बड़ी अनिच्छा से जाता, ऐसा सोचते हुए कि जैसे मजबूरी में जबरदस्ती जाना पड़ रहा हो। पर उस दिन मैं अपनी इच्छा से गया। हालाँकि वहाँ जाकर मुझे एक बार लगा अवश्य कि जैसे बहुत बड़ी गलती की हो, पर अब रात के डेढ़ बजे जब लिखने बैठा हूँ तो ऐसा लगता है कि वह एक गलती नहीं थी। जो बात वे अपने ही लोगों में बेधड़क कह गए, वह बात शिष्टाचार-वश मुझ जैसे एक बाहरी व्यक्ति से नहीं कहते, यदि मैं उनमें से किसी से भी, किन्हीं अन्य स्थितियों में मिला होता। चूँकि मैं काफी देर-से पहुँचा था इस कारण सबसे पीछे की पंक्ति में उस समय बैठा हुआ था जब उस महिला का छोटा-सा भाषण चल रहा था, पर बाद में मुझे मंच पर बैठने के लिए आमंत्रित किया गया। जो भी हो पर एक परदा तो कम से कम मेरी आँखों के सामने से हट गया।

राम नाम जपना, पराया माल अपना

शास्त्री जी ने एक और बात अपने श्रोताओं को बतायी। मुसलमान मौलवियों एवं हिन्दू ब्राह्मणों की व्याख्या वे लोग किस प्रकार से किया करते थे। मौलवियों के बारे में उन्होंने जो जुमला सुनाया वह तो मुझे ठीक से याद नहीं क्योंकि शायद पहली बार सुन रहा था, पर हिंदुओं के बारे में उन लोगों ने जो तुकबन्दी रची थी उसे याद रखना मेरे लिए बड़ा ही आसान था क्योंकि उसे तो मैं बचपन से सुनता आ रहा था - 'राम नाम जपना, पराया माल अपना'।

बचपन में इतनी बुद्धि तो नहीं थी कि उसके बारे में स्वतंत्र रूप से कुछ सोचता, अतः उसे सत्य ही माना। जब प्रौढ़ बना तब जाकर यह बात समझ में आयी कि वह तुकबन्दी किसी हिन्दू-द्वेषी ने ही रची होगी। आर्यसमाजियों को हिन्दू-द्वेषी के रूप में देखना मुझे कभी सिखाया ही नहीं गया, अतः यह खयाल ही मेरे मन में कभी न आ पाया कि आर्यसमाज का, इसके पीछे कोई हाथ भी हो सकता है। शास्त्रीजी ने अपने श्रोताओं को बड़े गर्व से बताया कि उसका श्रेय आर्यसमाज को ही जाता है।

लघुशंका कर उसे अपने ही मुँह में भर लेना

जिस खुशी से मैं इतना लम्बा सफर तय करके इतनी दूर से आया था, उसकी अनुभूति तो पूरी तरह से जाती ही रही, और मै उल्टे पाँव वापस जाने की तैयारी में था, कि मुझे मंच पर बुला लिया गया, और उसके बाद ऐसी कोई बात नहीं हुई जिससे मुझे कोई क्षोभ होता। पर उसके पहले जो कुछ हुआ उसमें आपत्तिजनक बातें और भी थीं। मुझे मंच पर आमंत्रित करने वाला स्वयं प्रांत के बाहर से निमंत्रित होकर आया था, अतः मंच पर होते हुए भी उस सभा में मेरे बोलने का प्रश्न नहीं उठता था।

मैं ठीक से तो नहीं कह सकता कि यह बात उसी महिला शास्त्रीजी ने कहा था या किसी अन्य पुरुष वक्ता ने, पर जिसने भी कहा हो वह पौराणिक (उनकी दृष्टि में हिंदू ब्राह्मण पक्ष) एवं वैदिक (उनकी दृष्टि में आर्यसमाजी पक्ष) विद्वानों में शास्त्रार्थ की बात कर रहा था। श्रोताओं को यह बताया गया कि पौराणिक विद्वानों में से एक ने लघु शंका की बात की तो वैदिक विद्वान ने उत्तर दिया लघुशंका कर अपने ही मुख में भर लें। लघु का अर्थ है छोटा। शंका का अर्थ है जिज्ञासा। जब दोनो शब्द मिल कर लघुशंका बन जाता है तो उसका अर्थ होता है पेशाब। अर्थात ब्राह्मण ने शास्त्राथ के दौरान यह कहने के बजाय कि मुझे एक 'छोटीसी जिज्ञासा' है उसने कहा मुझे एक 'लघु' 'शंका' है। उत्तर में आर्यसमाज के विद्वान ने कहा कि 'पेशाब (लघुशंका) करके अपने ही मुँह में भर लो'। वक्ता ने इस घटना को कुछ इस भाव से प्रस्तुत किया जैसे कि वह शास्त्रार्थ में तथाकथित वैदिक विद्वानों (आर्यसमाजी पक्ष) की तथाकथित पौराणिक विद्वानों (ब्राह्मण पक्ष) पर विजय की घोषणा कर रहा हो।

मंच पर बैठे वक्ता दिग्दर्शक थे और दर्शकों में बैठे श्रोतागण मार्गदर्शन के अभिलाषी। दिग्दर्शकों ने इसे अपना पुनीत कर्तव्य माना कि वे अपने श्रोताओं को उचित मार्ग दर्शन देते। यही कर्तव्य वे इतनी कुशलता के साथ 'शास्त्रार्थ' के नाम पर निभा रहे थे। मैं तब सभागृह में पीछे बैठा हुआ था। मंच पर वक्ताओं के पीछे दीवार पर एक बहुत बड़ा बैनर लगा हुआ था जिस पर बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था 'शास्त्रार्थ'। एक बाहरी द्रष्टा के रूप में मैंने उस दिन जाना कि आर्य समाज के विद्वानों में विद्वता का स्तर क्या है एवं उनकी दृष्टि में 'शास्त्रार्थ' के मायने क्या हैं।

जिसको सुधारना है, उसे दुश्मन माना तो कैसे चलेगा?

आर्यसमाज के सदस्यों में एक धारणा घर कर गयी है कि वे हिंदू समाज के सुधारक हैं। कुछ हिंदू भी ऐसा ही सोचते दिखायी देते हैं क्योंकि यही उन्हें बचपन से पढ़ाया गया है - आर्यसमाजियों को सदा हिंदूसमाज के सुधारक के रूप में दिखाकर। इस प्रकार से हिंदू अपने-आपको हीन एवं आर्यसमाजी अपने-आपको महान मानने लगा है। *इस संदर्भ में मेरे मन मे एक प्रश्न उठा कि जो हिंदू को अपना पहला शत्रु मानता है, वह हिंदू का सुधार कैसे करेगा?*

यह विघटन की भावना

अनेक हिन्दू यह कहते/लिखते हुए पाये जायेंगे कि हिंदू बँटा हुआ है। वे किस हिंदू की बात करते हैं? क्या वे आर्यसमाजी को हिंदू मानते हैं, जबकि आर्यसमाजी अपने आपको हिन्दू नहीं मानता? क्या वे जैन को हिन्दू मानते हैं, जबकि जैन अपने आपको हिन्दू नहीं मानता? क्या वे हरे-कृष्ण वालों को हिंदू मानते हैं, जबकि हरे-कृष्ण वाला अपने आपको हिन्दू नहीं मानता? क्या वे बौद्ध को हिन्दू मानते हैं, जबकि बौद्ध अपने आपको हिन्दू नहीं मानता? क्या वे कॉम्यूनिस्ट को हिन्दू मानते हैं, जबकि कॉम्यूनिस्ट अपने आपको हिन्दू नहीं मानता? जब वे अस्सी-नब्बे करोड़ हिन्दुओं की बातें करते हैं तो 'वे' कौन से अस्सी-नब्बे करोड़ हैं? *जो अपने-आपको हिन्दू नहीं मानते उन्हें हिन्दू कहकर आप एक सच्चे हिन्दू का अपमान करते हैं। उस सच्चे हिन्दू को बार-बार यह जताकर कि वह बँटा हुआ है, आप उसका मनोबल तोड़ते हैं।* विघटन की भावना उनमें नहीं है जो 'हिन्दू' हैं। विघटन की भावना उनमें है जो अपने-आपको हिंदू नहीं बल्कि आर्यसमाजी, जैन, हरे-कृष्णवाला, बौद्ध, कॉम्यूनिस्ट मानता है। झूठे हिन्दुओं को हिन्दू का दर्जा देकर सच्चे हिन्दू का अपमान न करें। यदि आप अपने-आपको हिन्दू का बड़ा शुभचिन्तक मानते हैं तो यह आपकी भ्रांति है। इस भ्रांति के वशीभूत होकर सीधे-सच्चे हिन्दू को दिग्भ्रमित न करें। *यदि आपको इस बात की समझ नहीं है कि जो अपने-आपको हिन्दू नहीं मानता वह हिन्दू नहीं हो सकता, तो अपनी इस नासमझी को दूसरों में न फैलायें।*

जब भारतवर्ष एक बार फिर मुस्लिम राष्ट्र बन जायेगा

यदि आपकी समझ 'हवा की रूख' को पहचानने की योग्यता रखती है तो यह बात आपसे छुपी नहीं होगी कि आजके सत्ताधारी इस राष्ट्र को मुस्लिम/ईसाई राष्ट्र बनाने की होड़ में लगे हैं। सत्ताधारी केवल वही नही जिनके हाथ में राजनीतिक सत्ता हो, बल्कि उनके साथ शामिल हैं इसी चेष्टा वे सभी जिनके हाथ में केन्द्रित है मीडिया की सत्ता एवं अपार विदेशी धन की सत्ता।

यदि भारत मुस्लिम राष्ट्र बन गया तो उनकी छुरियाँ उतनी ही तेजी से आर्यसमाजियों (जैनों, हरे-कृष्णों, बौद्धों, कॉम्यूनिस्टों) के गले पर चलेंगी जितनी तेजी से हिन्दुओं के गले कटेंगे। अतः आज वे अपने-आपको चाहे हिंदू न मानें, चाहे बुत-परस्ती (मूर्तिपूजा) न करें, पर इससे मुसलमानों की सोच पर कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।

निराकरण

जो व्यक्ति आर्यसमाज के उच्च पदों पर आसीन हैं उनकी सोच सधी हुई एवं संयत दिखती है। उनकी प्रतिक्रियाओं से ऐसा लगता है कि वे अपने इस 'छोटे-से सम्प्रदाय' के संकुचित दायरे से ऊपर उठकर राष्ट्रहित के वृहद परिप्रेक्ष्य में सोचने की क्षमता रखते हैं। पर यही बात उन सदस्यों के लिए नहीं कही जा सकती जिनका सम्पर्क जनसमुदाय से होता है। वे अपनी सोच से साधरण जनमानव को प्रभावित करते हैं। अब यदि उनकी सोच इतनी निम्नस्तरीय हो तो उसका फल भी वैसा ही होना स्वाभाविक है।

अगले दिन सोमवार 30 अप्रैल की शाम को मुम्बई आर्यसमाज के उपप्रधानजी ने, अपने प्रधानजी से मेरी बात करायी। प्रधानजी ने मुझे आश्वासन दिया कि वे इसका निराकरण करेंगे। यह उनका बड़प्पन था।

जब सहिष्णुता को कमजोरी माना जाता है

हिन्दू के लिए यह समझना आवश्यक है कि आज का वातावरण कुछ इतना दूषित हो चुका है कि उसका यह सोचना काफी नहीं कि 'हम सभी को अपना मानते हैं'। जो तुम्हें अपना नहीं मानता, यदि तुम उसे अपना मानते हो तो वह इसे तुम्हारा बड़प्पन नहीं मानता। वह इसे तुम्हारी कमजोरी मानता है। सब हमारे अपने हैं, इस सोच को चाहे तुम अपने भोलेपन की सज्ञा क्यों न दे लो, वह इसे तुम्हारी मूर्खता ही मानता है। *ऐसा भोलापन, ऐसा बड़प्पन किस काम का यदि 'यह' तुम्हें सम्मान का नहीं बल्कि अपमान का भागी बनाता है। समय और काल की गति को पहचानना सीखो।*

असहिष्णु कौन होता है?

असहिष्णु को पहचानने के लिए तुम्हे व्यक्ति की सोच को समझना होगा। जो कहता है कि केवल "आर्यसमाज ही सच्चे ईश्वर का रास्ता जानता है' वह असहिष्णु है। जो कहता है कि केवल "इस्लाम का अल्लाह ही सच्चा ईश्वर है' वह असहिष्णु है। जो कहता है कि केवल "बाइबिल का ग़ॉड ही सच्चा ईश्वर है' वह असहिष्णु है। जो कहता है कि केवल "टॉर'अ का जेहोवाह ही सच्चा ईश्वर है' वह असहिष्णु है। हिन्दू नहीं कहता है कि केवल 'हिन्दू का भगवान ही सच्चा ईश्वर है'। हिन्दू सहिष्णु है। सहिष्णुओं के राष्ट्र में असहिष्णुओं के लिए कोई स्थान नहीं क्योंकि वे असहिष्णु इस राष्ट्र में विघटन की प्रक्रिया को बल देते हैं। *आर्यसमाजियों के लिए यह कहना पर्याप्त न होगा कि वे हिन्दुओं के पक्ष में हैं। उन्हें यह सिद्ध करना होगा कि वे हिन्दू-द्वेषी नहीं हैं। मन से, वचन से, कर्म से उन्हें यह सिद्ध करना होगा।*

हिन्दू राष्ट्र बनेगा

हाँ, हिन्दू राष्ट्र बनेगा। उस राष्ट्र में असहिष्णुओं के लिए स्थान नहीं होगा। हिन्दू इतना मूर्ख नहीं कि वह उसी गलती को दोहरायेगा जो उसने एक बार इन राष्ट्रघातियों पर विश्वास करके किया था। सीरिया से ईसाई शरणार्थी आये क्योंकि पर्शिया के राजा शापुर द्वितीय ने उन्हें राष्ट्रघाती जानकर बाहर खदेड़ दिया। हिन्दुओं ने अपनी शिक्षा के अनुसार उन्हें अतिथि माना। इन्हीं अतिथियों ने हजार वर्ष तक प्रतीक्षा की, आस्तीन का साँप बने रहकर, और जब वास्कोडागामा आया तो उसके साथ मिलकर हिन्दुओं की पीठपर छुरा भोंका। और आज, चर्च के अपने ही दस्तावेजों के अनुसार, भारत का सबसे बड़ा जमीदार 'चर्च' है। सुनकर आश्चर्य हुआ? पढ़ें मेरी पुस्तक क्रमांक (4)। पर आज उनकी संगत में रहकर आपलोगों की सोच इतनी बदल चुकी है कि 'अतिथि देवो भव' को मूर्खता एवं उस भावना का दुरुपयोग करने वालों को बुद्धिमान की संज्ञा देते हैं। *ठीक है, अब उसी सोच के सहारे बुद्धिमान बनिए एवं असहिष्णुओं की तरफ से अपनी* *अँाखे मत मूँदिये। साथ ही असहिष्णुओं में भेद करना भी सीखिए।* आर्यसमाजी आपको नीची नजर से देखता है, आपके प्रति उलाहना एवं तिरस्कार की भावना रखता है, और इसी आधार पर अपनी संख्या बढ़ाता है। वह अपने-आपको ज्ञानी और आपको अज्ञानी मानता है (ऊपरी शिष्टाचार के धोखे में न रहिए)। वह आपकी आस्थाओं पर कुठाराघात करना अपना पुनीत कर्तव्य मानता है, क्योंकि उसे यह पाठ पढ़ाया गया है कि वह हिन्दू समाज का सुधारक रहा है और वह आपका भी सुधार ही करना चाहता है। वह इस सोच के सहारे आगे बढ़ता है कि उसके मन में आपके प्रति छुपी हुई उलाहना एवं तिरस्कार की भावना उचित है, और इसी कारण वह आपको 'मूर्तिपूजा रूपी अज्ञान' के दलदल से मुक्ति दिलाना चाहता है। इस्लाम और ईसाइयत का अनुयायी भी कुछ इसी तरह की सोच के साथ आगे बढ़ता है। फर्क केवल इतना है कि वह अपने आपको इतना बड़ा ज्ञानी नहीं समझता जितना बड़ा ज्ञानी आर्यसमाजी अपने आपको समझता है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि आर्यसमाजी पोथी पढ़ा हुआ विद्वान है, पोथी पढ़कर उसने सच्चे ईश्वर का रूप जान लिया है, और उसी ईश्वर तक आपको ले जाने के लिए लालायित है। इस्लाम और ईसाइयत का अनुयायी पोथी के ज्ञान का मारा हुआ नहीं, बल्कि एक कोल्हू के बैल की तरह है जिसके आँखो पर पट्टी बंधी है और वह बस एक अंधे की तरह एक ही धुरी के इर्द-गिर्द घूमता जा रहा है। पर इन सबके बावजूद आर्यसमाजी आपकी गर्दन पर छुरी नहीं चलायेगा, वह केवल आपके आत्मसम्मान, आपकी आस्था, आपकी निष्ठा पर छुरी चलायेगा। पुस्तक पढे विद्वान की गति यहीं तक सीमित हुआ करती है। पर मुसलमान और ईसाई आपकी गर्दन पर छुरी चलायेगा क्योंकि कुरान और बाइबिल उन्हें यही हिदायत देता है (पढ़ें पुस्तक क्रमांक 15 *मज़हब ही सिखाता है आपस में बैर करना)।* मुसलमान आपको हलाल करेगा और छाती ठोककर कहेगा कि मैंने किया है। हलाल करते समय वह अल्लाह का नाम बार-बार लेगा और छुरी धीरे-धीरे चलायेगा ताकि आप तुरंत मर न जायें, बल्कि आपका खून धीरे-धीरे रिसता रहे और जब तक आपकी चेतना रहे तब तक आपको उस पीड़ा का अनुभव होता रहे। ईसाई छुरी चलाने में विश्वास नहीं करता, न ही छाती ठोककर कहने में कि हाँ मैंने किया है। वह दिन में जेन्टलमैन बनकर आपसे मिलेगा और रात के अंधेरे में आपकी पीठ पर गोली दागेगा। आपको हलाल की पीड़ा न सहनी पड़ेगी। अतः सोच लीजिए कि आपको हिन्दू राष्ट्र की आवश्यकता है कि नहीं।

शनिवार 28 अप्रैल 2007

आर्य समाजियों मे हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति उलाहना की भावना का आधिक्य

कतिपय आर्यसमाजियों द्वारा लिखित पुस्तकें मेरे पास बिना माँगे उपहार स्वरूप पहुँचती रहीं। देश के विभिन्न प्रान्तों से कुछ आर्य समाजी व्यक्तियों एवं आर्यसमाजी स्वामियों (सन्यासियों) के पत्र समय-समय पर मुझे मिलते रहे। इन सभी में हिंदू देवी-देवताओं के प्रति भर्त्सना एवं अवमानना की भावना बड़ी स्पष्ट रूप से झलकती थी। काफी समय तक मैं उन्हें अनदेखा, अनसुना करता रहा, टालता रहा कि फिर कभी सही। पर एक समय आ ही गया जब मेरे सब्र का बाँध टूटा और मैंने यह आवश्यक समझा कि इस बारे में कुछ कहना अब जरूरी हो गया है। तब पहली बार अपनी 'सत्ताइसवीं पुस्तक' (आतंकवाद का एक अन्य पहलू - राष्ट्र का इस्लामीकरण) के 'परिशिष्ट' में मुम्बई उच्च न्यायालय के एक निर्णय के संदर्भ में लिखते हुए यह विषय मेरे जेहन में कौंधा। तब मैंने पाँच पैराग्राफ लिखे इस शीर्षक के अंतर्गत 'तब *कहेंगे जो भगवान अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकता वह हमारी रक्षा क्या करेगा?'*

मैने तो फिर भी तर्कसंगत ढंग से 'उनके सोच के आधार' में एक कमी की ओर संकेत किया था पर कुछ पाठकों को यह बात अच्छी नहीं लगी। जब वे हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति तिरस्कार की भावना से लिखते हैं तब उन्हें यह अहसास क्यों नहीं होता कि हिन्दुओं को कैसा लगता होगा? आर्यसमाजियों के आक्षेपों को अनेक समय तक सुनने एवं सहने के पश्चात ही मैंने कुछ शब्द लिखे थे। *पर हिन्दू तो आर्यसमाजियों पर कोई आक्षेप भी नहीं करता फिर भी वे सदा हम पर उंगली उठाने में अपने आपको कुछ गौरवान्वित सा महसूस करते हैं।* खैर, उन पाँच पैराग्राफों को मैं आपके सामने रखने जा रहा हूँ। पर इसके पहले कुछ भूमिका की आवश्यकता है।

भूमिका

मैं एक हिंदू हूँ। मुझे हिंदू धर्म की अच्छी समझ भी है एवं उसके प्रति अटूट आस्था भी है। अतः मेरा कर्तव्य बनता है कि मैं उनआक्षेपों का समुचित उत्तर दूँ जो हिंदुओं पर बहुधा लगाये जाते हैं। ऐसा करते समय मैं पक्ष नहीं देखता कि आक्षेप लगाने वाला मेरे पक्ष में है या विपक्ष में। कारण मेरी निष्ठा श्री नारायण के प्रति है, हिंदू धर्म के प्रति है, किसी संगठन या व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं। व्यक्तिगत संबंधों को मैं महत्वपूर्ण मानता हूँ पर धर्म से ऊपर नहीं। *जो लोग मेरी लेखनी से परिचित हैं वे जानते होंगे कि मैं अपने पक्ष के बचाव में अपना समय नष्ट नहीं करता। मैं शब्दों द्वारा किए गए वार का सीधा उत्तर देना पसंद करता हूँ और वार करने वाले की ही भाषा में। जब तक कोई मेरी आस्थाओं पर वार नहीं करता तब तक मैं दूसरों के मामलों में टाँग नहीं अड़ाता।*

मैं चाहता हूँ कि हिंदू अपने आपको हिंदू मानने में गौरवान्वित अनुभव करे। मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसा व्यक्ति जो वाक-चातुरी में निपुण हो, वह एक साधारण भोले हिंदू को अपने वाक-जाल में उलझा कर उल्टी पट्टी पढ़ाये।

मैं यह भी नहीं चाहता कि हिंदू अपनी आस्थाओं के प्रति अपने मन में शंका पाले और किसी भी प्रकार की हीन भावना से ग्रसित हो। अतः मैं ब्राह्मणोंचित2 एवं क्षत्रियोचित3 प्रयासों द्वारा हिन्दू आस्थाओं, हिन्दू भावनाओं, हिंदू परम्पराओं, हिंदू परिपाटियों के पक्ष में, एवं हिन्दू संस्कृति रक्षार्थ अपनी कलम उठाया करता हूँ। 2 (ज्ञान द्वारा) 3 (वार द्वारा)

आम हिंदू की तुलना में कुछ अधिक पढ़े-लिखे होने के कारण आर्यसमाजी अपने-आपको अधिक ज्ञानी मानते हैं। एक हिंदू को इस बात से कोई ऐतराज नहीं। *समस्या तब आती है जब ये आर्यसमाजी 'ईश्वर के संबंध में' अपने-आपको अधिक ज्ञानी होने की भ्रांति अपने मन में पाल लेते हैं। उन्हें शायद इस बात का गुमान नहीं कि ईश्वर किसी की बपौती नहीं है, न ही पोथी पढ़ कर ईश्वर का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।* अब वे पाँच पैराग्राफ आपके सामने रखता हूँ जिनका जिक्र मैंने इस भूमिका से पहले किया था।

तब कहेंगे जो भगवान अपनी रक्षा नहीं कर सकता वह हमारी रक्षा क्या करेगा?

'पोथी पढ़ कर जब लोग विद्वान बन जाते हैं तो कुछ ऐसी ही बातें कहते हैं। बचपन में अपनी पाठ्य-पुस्तक में एक कहानी पढ़ी थी मैंने, जो आपने भी कभी न कभी पढ़ी ही होगी। एक बड़े नामी-गरामी स्वामीजी हुआ करते थे। उनके आज लाखों अनुयायी हैं। उनमें से आज भी अनेक अनुयायी पुस्तकें लिख कर हिन्दू देवी-देवताओं का मजाक उड़ाते हैं। ये सभी बड़े ज्ञानी-गुणी जन हैं जो अपने संस्थापक स्वामीजी का नाम रोशन कर रहे हैं।

कहते हैं कि एक दिन स्वामीजी बैठे थे गणेश पूजा में। सामने मोदक, या फिर लड्डू या कोई मिठाई रखी हुई थी, जैसा हम हिंदू पूजा के लिए करते हैं। सो हमारे स्वामीजी भगवान (गणेश जी) के ध्यान में बैठे थे। जाने उनका ध्यान कहाँ था कि उन्हें दिखाई पड़ गया कि गणेश जी का वाहन, एक चूहा, आकर मोदक उठा ले गया। बस वहीं उनका विश्वास डगमगा गया। उनकी अंतरात्मा ने कहा कि जो गणेश जी अपने मोदक की रक्षा नहीं कर सके, वह अपने भक्तों की रक्षा क्या करेंगे। तब उन्होंने एक नये 'समाज' की स्थापना कर डाली।

इन पंक्तियों को लिखते हुए मुझे यह खयाल आया कि यदि उनका ध्यान 'केवल' गणेश जी में रमा होता, और इधर-उधर भटक नहीं रहा होता, तो शायद उन्हें, उस तल्लीनता में, गणेश जी के वाहन रूपी चूहे का आना, और मोदक उठा ले जाना, दिखा न होता। चाहे किसी भी रूप में ईश्वर को देखना चाहा हो उन्होंने, यदि उसी रूप में रमे रहते, तो अपनी इस तल्लीनता में उन्हें, उनके आस-पास क्या हो रहा है, उसका एहसास तक न होता, न ही चूहा नजर आता, न मोदक का उठा ले जाना।

जब वे अपनी इस अनोखी दुनिया से बाहर आते, उनका ध्यान टूटता, तो मोदक का वहाँ न होना उन्हें एक चमत्कार जैसा प्रतीत होता। उन्हें लगता कि गणेश जी ने उनका दिया हुआ भोग ग्रहण कर लिया और उन्हें कृतार्थ कर दिया। उनका विश्वास न डगमगाता, बल्कि और गहरा हो जाता। उन्हें एक नये 'समाज' की स्थापना कर अपने अनुयायियों को मूर्ति-पूजा विरोधी बनाने की आवश्यकता न होती। और इस प्रकार हिंदू समाज एक और बड़े विघटन से बच जाता।

सिद्धिविनायक भी गणेश ही हैं। उनके मंदिर की सुरक्षा को क्षीण कर दिया जाये, सुरक्षा दीवार को ढहा कर। आतंकवादियों के लिए मंदिर में बम रखवाना आसान कर दिया जाये। जब मंदिर उड़ा दिया जाये तो यह कहा जाये कि देखो हिंदुओं, तुम्हारा यह भगवान अपनी रक्षा तो कर नहीं सकता, वह तुम्हारी रक्षा क्या करेगा?'

जिस आधार पर यह प्रक्रिया आरम्भ हुई, वह आधार ही कितना निराधार था

*हिंदुओं के लिए यह जानना आवश्यक है कि जिस घटना के आधार पर आर्य समाजियों में हिंदुओं द्वारा 'मूर्ति-पूजा के प्रति तिरस्कार की भावना' एवं हिंदू देवी-देवताओं के 'अस्तित्वहीन होने की सोच' उपजी, वह आधार ही अपने आपमें कितना निराधार था।* इस बात को समझने के पश्चात हिंदू यह जानेंगे कि आर्य समाजियों के आक्षेपों का समुचित उत्तर कैसे दिया जाना चाहिए, यदि वे गले पड़ जायें। हिंदुओं के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि जो स्वयं भ्रमित है वह अन्यों को भ्रमित करने के सिवा और कर ही क्या सकता है। आर्यसमाजियों को ईश्वर की अनुभूति तो है नहीं, पोथी पढ़कर उनमें जो विद्वता आयी उसकी अपनी सीमायें होती हैं।

आर्यसमाजी आपसे कहता है कि केवल वेदों का ईश्वर ही असली है और आपके देवी-देवता काल्पनिक हैं। उससे कहिए कि यदि तुम कहते हो कि जिस देवी-देवता को मैं मानता हूँ वह काल्पनिक है और जिस ईश्वर को तुम मानते हो वह काल्पनिक नहीं है तो ठीक है अपनी बात सिद्ध करो। अपनी बात को सिद्ध करने के लिए यदि वह पोथियाँ दिखाना शुरु करे या फिर आपको तर्कों में उलझाना आरम्भ करे, तो उससे कहो भाई अपना रास्ता नापो, मुझे मेरी आस्थाओं के साथ जीने दो, तुम अपनी आस्थाओं के साथ जीयो, मुझे अपने खेमे में घसीट कर अपनी संख्या बढाने की कोशिश मत करो। वह चिढ़ेगा, कहेगा, मैं तुम्हें ज्ञान दे रहा हूँ और तुम अज्ञान का दामन थामे रहना चाहतो हो? उससे कहना, तुम्हारा ज्ञान तुम्हें मुबारक, उस ज्ञान के सहारे ईश्वर को पा सको तो पाओ, और तब आकर मुझसे बात करो।

जिसने आपकी पीड़ा ही न समझी वह आपको देगा क्या?

हिंदू को आज पहला पाठ यह पढ़ना है कि वसुधैव कुटुम्बकम (इस धरती पर बसने वाले सभी एक कुटुम्ब की भाँति हैं) की परिकल्पना तभी तक प्रयोग में लायी जा सकती है जब हिंदू इतना शक्तिशाली हो कि जो उसकी तरफ आँख उठा कर देखने की चाहत भी रखे उसकी आँखें उठने के पहले ही झुक जायें, जो हिंदू के विरुद्ध बोलने को जाये उसकी जबान खुलने के पहले ही लड़खड़ा जाये। पर यह सब तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक एक असधारण नेतृत्व का उदय नहीं होगा जिसकी एक आवाज पर सभी हिंदू अपने-अपने घरों से बाहर आ जायें। निकट अतीत में एक ऐसे ही नेतृत्व का उदय हुआ था जिसका नाम था मोहनदास करमचन्द गाँधी। पर उसने हिन्दू को सिंह बनाने के बजाय उसे नपुंसक बना दिया।

जब तक अधर्म इतना न बढ़ जाये कि लोग त्राहि-त्राहि न करने लगें तब तक उस अधर्म के विनाश की प्रक्रिया आरम्भ नहीं होती। अतः जब तक आपको इस बात की अनुभूति नहीं हो जाती कि 'बहुत सह लिया, बस अब और नहीं' तब तक उस नेतृत्व की आस आपमें नहीं जगेगी। और जब तक आपको प्यास न लगेगी तब तक आपकी प्यास को बुझाने वाला भी आपके सामने नहीं आयेगा। जब आपका गला इतना सूख जायेगा कि आप छटपटा उठेंगे तब यदि वह प्याऊ पानी लेकर आपके सामने आता है, तो ही आप उसकी कद्र करना सीखेंगे। तब यदि वह आपसे कहता है कि आओ मैं तुम्हारी प्यास बुझाऊँगा, तो आप उसके पीछे चल पड़ने को राजी होंगे, क्योंकि अब आपके पास खोने के लिए कुछ भी नहीं बचा। तब आप उसे संदेह की दृष्टि से नहीं देखेंगे क्योंकि अब वह आपसे कुछ छीन भी तो नहीं सकता। उस चरम स्थिति तक पहुँचने से पहले, यदि आप सदा उसे शंका की दृष्टि से देखते रहे हैं, तो इसमें आपका कोई दोष नहीं, क्योंकि अब तक जो भी आपके सामने आया, उसने आपको यही आस दिलाया कि वह आपको कुछ देगा, पर देने के बजाय छलावे से, वह आपसे कुछ न कुछ ले ही गया। जिसने आपकी पीड़ा ही न समझी वह आपको देगा क्या?

30 अक्टूबर 2006

सच्चे ईश्वर के स्वरूप को जानने की भ्रांति में जीने वाले लोग

आदरणीय स्वामी जी, आपने मुझे लिखा है कि 'आप मेरी दृष्टि में एक प्रकार से अंधविश्वासु, भावना प्रधान हो, आपने सच्चे ईश्वर का स्वरूप जाना नही है, जो ईश्वरीय वेदवाणी प्रतिपादन करती है'।

मेरे मन में एक प्रश्न उठा। क्या आपने 'सच्चे ईश्वर का स्वरूप जाना है'? यदि हाँ, तो कैसे? पुस्तकों से, या फिर गुरू से? ध्यान दें, पुस्तकें तो सभी पढ लेते हैं। गुरुओं से तो सभी सीख लेते हैं। और मानव शरीर में अवतरित, माया की परिधि में बंधे हुए, गुरुओं के ज्ञान की भी अपनी ही सीमा होती है। खैर, इन सबसे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न जो मेरे मन में उठा, वह यह कि क्या आपने उस स्वरूप को 'स्वयं अपनी व्यक्तिगत अनुभूति के द्वारा' जाना है? आपके दो उत्तर हो सकते हैं - हाँ, या नहीं। यदि आपका उत्तर 'हाँ' है, तो मैं आशा करूँगा कि आपमें, मेरे लेखन में दिये गये संकेतों की, 'पहचान होनी चाहिए' थी। यदि आपका उत्तर 'ना' है, तो मेरे मन में यह प्रश्न उठेगा - आपको यह अधिकार किसने दिया कि आप 'निर्णायक ढंग से' मुझसे कह सकें कि 'आपने सच्चे ईश्वर का स्वरूप जाना नही है'?

आपने 'अंधविश्वास' की बात भी कही है। अंधविश्वास क्या है? वह विश्वास जो 'अज्ञान पर आधारित' होता है। यदि आपने 'स्वयं अपने व्यक्तिगत अनुभव' से, आपके कहे हुए सच्चे ईश्वर का स्वरूप 'नहीं' जाना है, तो मेरे बारे में आपकी राय, क्या अज्ञान पर आधारित नहीं है? यदि है, तो क्या आप, अपने आप को, अंधविश्वासु घोषित करेंगे?

आपने 'ईश्वरीय वेदवाणी' का भी उल्लेख किया है। यदि आपने स्वयं आपके कहे हुए सच्चे ईश्वर का स्वरूप जाना होता, तो 'क्या आप इन चीजों से ऊपर नहीं उठ चुके होते', कि वेद ईश्वर की वाणी है, कि नहीं? जिसके सम्पूर्ण अस्तित्व का समागम हो चुका हो ईश्वरीय अस्तित्व में, निर्विकल्प समाधि की स्थिति में, क्या उसके लिए ग्रंथों, और नामों, का महत्व रह जाता? ये सभी प्रश्न आपको स्वयं अपने आपसे पूछने चाहिए। विनीत, मानोज रखित

3 जनवरी 2007

मान्यताओं की होड़ में जब खो जाते हैं लोग

आदरणीय स्वामी जी, मेरे मन में कुछ प्रश्न उठे हैं, सम्भवतः आप उनका समाधान कर सकें - यदि ऋ ग्वेद 1-164-46 कहता है 'ब्रह्माण्डीय *सत्य एक है परन्तु प्रज्ञावान उसे भिन्न-भिन्न ढंग से अनुभव करते हैं--जैसे इंद्र, मित्र, वरुण, अग्नि, शक्तिशाली गरुत्मत, यम एवं मातरिस्वान'* (ऋ ग्वेद 1-164-46), तो फिर क्या ऋ ग्वेद यह भी कहता है कि इंद्र, वरुण, इत्यादि देवता काल्पनिक हैं? यदि ऋ ग्वेद ऐसा कहता है तो कृपया संदर्भ दें।

यदि एक भक्त भावविभोर होकर पत्थर की मूर्ति को भगवान मानकर उसकी पूजा करता है तो क्या कण-कण में बसने वाले उस सर्वज्ञ ईश्वर को यह नहीं ज्ञात होता कि भक्त उसी की पूजा कर रहा है? यदि सर्वज्ञ ईश्वर को यह ज्ञान होता है कि भक्त उन्हीं की पूजा कर रहा है तो क्या वह उस पूजा को स्वीकार नहीं करते हैं?

क्या इस संसार की रचना उसी वैदिक ईश्वर ने की है जिसकी बातें आप करते हैं? यदि हाँ, तो क्या आपके चेहरे एवं मेरे चेहरे की रचना भी उन्हीं ने की है? यदि हाँ, तो क्या वह चाहें तो स्वयं आपके या मेरे चेहरे को धारण नहीं कर सकते? अर्थात, क्या वह स्वयं को किसी भी रूप में प्रकट नहीं कर सकते, वह रूप चाहे जो भी हो, चाहे वैदिक इंद्र का हो, चाहे वैदिक वरूण का हो, या चाहे वेदों में जिक्र न किये गये किसी अन्य देवी-देवता का हो? यदि वैदिक ईश्वर ने आठ हाथ-पाँव वाले ऑक्टोपस की रचना की है तो क्या वह आठ हाथ-पाँव वाले शरीर के रूप में अपने-आप को व्यक्त नहीं कर सकते?

अपने इन प्रश्नों के ड्डत्द्धड्ढड़द्य एवं तर्कसंगत समाधानों की आपसे अपेक्षा है। आपसे विनती है कि कृपया अपनी मान्यताओं के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर न दें। आपसे यह भी प्रार्थना है कृपया आर्यसमाज की मान्यताओं के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर न दें। *ईश्वर की व्यक्तिगत अनुभूति हो तो वह 'सत्य' बनता है अन्यथा केवल 'मान्यता' ही बना रहता है।*

कुरआन कहता है कि अल्लाह ही सत्य है। बाइबिल कहता है कि ग़ॉड ही सत्य है। पेंटाट्यू कहता है कि जेहोवाह ही सत्य है। आर्य समाज कहता है कि वैदिक ईश्वर ही सत्य है। ये सारी मान्यतायें हैं। ये सारी मान्यतायें एक दूसरे से टकराती हैं। जो इन मान्यताओं के अनुयायी हैं वे कहते हैं कि 'केवल मेरी' मान्यता ही सत्य है। स्वाभाविक है कि सभी मान्यतायें 'एक साथ' सही नहीं हो सकती जब वे सभी एक दूसरे को गलत बताती हैं। और इनमें से कोई भी अपनी मान्यता को एक मात्र सत्य और दूसरे की मान्यता को मिथ्या 'साबित' नहीं कर सकता। अतः किसी भी मान्यता को 'एक मात्र सत्य' का दर्जा नहीं दिया जा सकता है।

इस कारण मैने आपसे विनती की है आप कृपया मान्यताओं के आधार पर मेरे प्रश्नों का उत्तर न दें। यदि आपके पास मेरे प्रश्नों का ड्डत्द्धड्ढड़द्य एवं 'अभेद्य' तर्कसंगत समाधान न हो तो कृपया इतना ही कहें, मुझे नहीं मालूम। मैं स्वयं किसी पर अपनी मान्यता थोपना पसन्द नहीं करता। स्वाभाविक है कि मैं अन्यों की मान्यता अपने ऊपर थोपे जाना पसन्द भी, वैसे ही, नहीं करता। इसी कारण मैने आग्रह किया है कि आप मान्यताओं के आधार पर नहीं बल्कि 'अभेद्य' तर्कों के आधार पर उत्तर दें, अथवा कहें कि इनके उत्तर मेरे पास नहीं हैं। *मैंने 'अभेद्य' तर्क की माँग की है, क्योंकि सहजता से भेद्य तर्क केवल वाद-विवाद की सृष्टि करते हैं, समाधान नहीं प्रस्तुत करते।* अतः मेरी प्रार्थना है कि आप अपने आपको पूरी तरह से आश्वस्त कर लें कि आपके तर्क सहजता से भेदे नहीं जा सकते, तभी आप उन्हें मेरी ओर बढ़ायें।

पिछले पत्र में आपके सभी उत्तर अपनी एवं आर्य समाज की मान्यताओं के आधार पर थीं, अतः मैने आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है कि कृपया मान्यताओं के आधार पर कुछ भी न कहें। हाँ यदि आपके पास ईश्वर की व्यक्तिगत अनुभूति है, जिसके बारे में आपको किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं कि 'आपने निःसंदेह ईश्वर को स्वयं पाया है' तो उस ज्ञान के आधार पर आप मेरे प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। आप पायेंगे कि मैं अपने लेखन में यह नहीं कहता कि हिन्दू का ईश्वर ही एक मात्र सत्य है, मुसलमान का नहीं, ईसाई का नहीं, यहूदी का नहीं (और बौद्ध जैन का तो ईश्वर होता ही नहीं)। मैं केवल यही कहता हूँ कि निःसंदेह हिन्दू का ईश्वर, मुसलमान का अल्लाह, ईसाई का गॉड, यहूदी का जेहोवाह 'एक' नहीं बल्कि अलग-अलग 'परिकल्पनायें'1 हैं, और जो उन्हें एक बताते हैं वे या तो स्वयं अज्ञानी हैं, या फिर पाखंडी है। सादर, मानोज रखित 1 (यहाँ मैने परिकल्पना शब्द का प्रयोग किया है, कल्पना का नहीं)

जब अपने कमरे की सारी खिड़कियाँ बंद कर देते हैं लोग

माननीय स्वामी जी, आपका 22 जनवरी का पत्र मिला। मेरी शंकाओं/मेरे प्रश्नों के उत्तर उसमें नहीं थे। कारण, आपने मेरे प्रश्नों की गभीरता को समझा ही नहीं था। मैं इस दुविधा में था कि आपके पत्र का उत्तर दूँ या उसे नजरअंदाज करूँ? मेरी पहली प्रतिक्रिया थी उसे अनदेखा करना और बात को आयी-गयी मान कर वहीं दफना देना। पर आज मेरी सोच बदली।

मै अपनी सोच किसी पर थोपना पसंद नहीं करता। हर व्यक्ति अपनी आस्था के अनुसार जीने का हक रखता है। *यदि मेरी नजर में कोई चीज गलत होती है तो उसे मैं पुस्तकों के माध्यम से कहता हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि पाठक के पास एक विकल्प है। वह उस पुस्तक को रद्दी में फेंक सकता है।* पर आपने मेरी आस्थाओं पर सीधा प्रहार किया था। अतः आपको उत्तर देना आवश्यक था। आरम्भ आपने किया था, अतः अंत मुझे करना होगा। विशेष कर तब जब एक व्यक्ति पोथी पढ़ कर ज्ञान देने आता है, उस विषय पर जिसका उसे कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं। और वह भी एक ऐसे व्यक्ति को जो कुछ कहता भी है तो निरंतर परीक्षण एवं व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही।

मेरे सामने यह समस्या भी थी कि जो कुछ भी मैं आपसे कहूँगा वह व्यर्थ जायेगा और मेरे बहुमूल्य समय का अपचय होगा। बहुत वर्षों पहले मुझे आमंत्रित किया गया था एक सभा में च्द्यद्वड्डड्ढदद्यद्म क़ड्ढड्डड्ढद्धठ्ठद्यत्दृद दृढ क्ष्दड्डत्ठ्ठ के। उनके उदगारों को सुनते हुए मेरे मन में एक बात उठी थी। ये वक्ता ऐसे हैं जिन्होंने अपने कमरे की सारी खिड़कियाँ बन्द कर दी हों ताकि रोशनी न आ सके। अनेक वर्षों के पश्चात वही बात मेरे मन में उठी, एक बार फिर, जब ङच्च् के एक सज्जन मेरे घर पर आये, जिनका कहना था कि उन्होंने कोई 4,000 या फिर 40,000 (ठीक याद नहीं) पुस्तकें पढ़ी हैं और श्री के एस सुदर्शन उनसे सलाह लिया करते हैं। उन्होंने श्री सीता राम गोयल जी का नाम सुनकर अपने साथी से पूछा क्या सीता राम गोयल ङच्च् का कोई बड़ा चिंतक या लेखक था जो उनके लिए यह आवश्यक होता कि वह सीता राम गोयल के लेखन को कोई महत्व देते! ये ङच्च् के पोथी पढ़े हुए विद्वान भी उसी प्रकार के व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने कमरे की सारी खिड़कियाँ बंद कर रखी हों और वे उसी साहित्य को महत्व देते हैं या फिर पढ़ने के लायक मानते हैं जो किसी ङच्च् के दिग्गज ने लिखी हो, और यह व्यक्ति स्वयं भी अपने आपको एक वैसा ही दिग्गज मानता था। मजे की बात यह है कि उनके साथी के पास करोड़ रुपये का बजट था और वे मेरी पुस्तकों के प्रचार प्रसार में सहायता करने के उद्देश्य से मेरे पास आये थे, ऐसा उनका कहना था।

कई वर्षों के पश्चात वही ख्याल मेरे मन में एक बार फिर उभरा कि आर्य समाज एवं ङच्च् में एक समानता तो अवश्य है कि वे दोनों अपने कमरे की खिड़कियों को बंद करके रोशनी आने देना पसंद नहीं करते। मजे की बात यह है कि आर्य समाज एक कदम आगे बढ़ कर यह करता है, अपने आपको वेदों का समर्थक घोषित करते हुए, जबकि प्रथम वेद ही कहता है कि अपनी खिड़कियाँ मत बंद करो। पोथी पढ़ना एक बात होती है और उसे समझना अलग बात। मैं ये बातें आपसे कह रहा हूँ यह जानते हुए कि आप मेरी सहायता करना चाहते हैं, मेरे पुस्तकों के प्रचार-प्रसार में, और हो सकता है कि यह उसका र्च्ण्ड्ढ कदड्ड हो, ठीक उसी प्रकार से जो कोई करोड़ रुपये तथाकथित बजट लेकऱ मेरी मदद करने आये, और अंत में यह कहते हुए गये कि मैं भी अरुन्धती रॉय जैसा ही हूँ।

मैं सोचने लग जाता हूँ कि मुसलमान कहते हैं कि कुरआन अल्लाह की आवाज है, ईसाई कहते हैं कि बायबल God की आवाज है, आर्यसमाजी कहते हैं कि वेद ईश्वर की आवाज है। किसी ने देखा नहीं है, किसी ने जाना नहीं, बस वे केवल मानते हैं, ठीक उसी प्रकार से जैसे हिन्दू मूर्ति को मानता है। एक हिन्दू को छोड़ कर बाकी सब कहते हैं कि मैं ही सही हूँ बाकी सब गलत हैं। मुसलमान, ईसाई और आर्यसमाजी तीनों एक दूसरे को गलत बताते हैं और अपने आपको सही क्योंकि तीनों अज्ञानी हैं। तीनों भ्रमित हैं और अपने-अपने भ्रम को फैलाते हैं। इनमें से किसी एक को भी ईश्वर या अल्लाह या क्रदृड्ड का कोई वास्तविक अनुभव नहीं है। ये तीनों उन अन्धों की तरह हैं जो दूसरों को राह दिखाने चले हैं। कॉम्यूनिस्ट मार्क्ससिस्ट भी इसी category में आते हैं, केवल फर्क इतना है कि वे कहते हैं ईश्वर है ही नहीं। आजकल तो एक नया धन्धा शुरू हो गया है जो यह कहते हैं कि मैं ही ईश्वर हूँ, या फिर हर व्यक्ति ईश्वर है। यह मानव का दुर्भाग्य है कि ये पाँचों अर्ध-ज्ञानी बहुत आवाज करते हैं ठीक वैसे ही जैसे एक घड़े में थोड़े से चने हों तो वे सभी बड़ा शोर करते हैं। उन सभी का यह अर्ध-ज्ञान कुछ इतना आवेग लिये होता है कि जिधर भी जाता है वहीं थोड़ा-थोड़ा छलकता जाता, अपने अस्तित्व की धाक जमाने के उद्देश्य से, ठीक वैसे ही जैसे एक गगरी जो आधी भरी हो तो छलकती ही जाती है।

आपका एक और पिछला पत्र मिलने के पश्चात मुझे बचपन में पढ़ी हुई एक कहानी याद आ गई थी जिसे मैं भूल सा चुका था। एक कोई बहुत नामी गरामी सन्यासी हुआ करते थे, उनके ही जीवन की यह कोई एक घटना है। वे शायद गणपति के बहुत प्रकाण्ड भक्त थे। एक दिन ध्यान मग्न होकर गणेश जी की पूजा में तल्लीन थे। अचानक एक चूहा आया और मोदक उठा ले गया। सन्यासी का भ्रम वहीं टूट गया। उसने कहा यह कैसा भगवान जो अपने मोदक की रक्षा तो कर नहीं सकता? उस दिन से उसने एक नयी जमात खड़ी कर दी। प्रश्न है - उस सन्यासी का ध्यान कहाँ था? मोदक पर? उसका ध्यान यदि अपने आराध्य गणेश जी में रमा होता तो न उसे चूहा दिखता, न ही मोदक। जिसका ईश्वर के साथ सीधा संबंध ही न बना हो, वह तो कोरा पंडित ही रह गया! मानोज रखित

यह बात आर्यसमाजियों को अच्छी नहीं लगेगी, पर जब वे अपने आधारहीन तर्कों के द्वारा हिन्दुओं की आस्थाओं पर कुठाराघात करते रहना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं तब उन्हें इसे तो सहना ही पड़ेगा। हिन्दू में क्षत्रिय भावना को जगाना ही मेरा उद्देश्य है। एक तरफा खेल बहुत हो चुका।